विवेक वचनावली

अर्थात्

स्वा० विवेकानन्दके चुने हुए उपदेशोंका संग्रह

प्रकाशक

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

१२६ हरिसन रोड,

कलकत्ता

द्वितीय बार] आश्विन सं० १९७८ [मूल्य ।)

प्रकाशक
बैजनाथ केडिया
व्यवस्थापक
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
१२६ हरिसन रोड, कलकत्ता

मुद्रक
महावीरप्रसाद पोद्दार
वणिक प्रेस
१०, मिर्ज़ापुर स्ट्रीट,
कलकत्ता

द्वितीय संस्करण

अमेरिकामें वेदान्तकी पताका फहरानेवाले वीर संन्यासी स्वामी विवेकानन्दका नाम शिक्षित हिन्दी प्रेमियोंसे छिपा नहीं है। उन्हींके उपदेशप्रद वचनोंका यह संग्रह आपके सामने उपस्थित है।

इस पोथीका पहला संस्करण शीघ्रही समाप्त हो गया था। पर कई कारणोंसे दूसरी बार निकलनेमें देर हुई। इसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं। इस बार विषय वही रहनेपर भी सरलताकी दृष्टिसे भाषामें बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया है।

हम स्वामी विवेकान्दके अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित करनेका उद्योग कर रहे हैं। उनमेंसे शायद 'भक्ति योग' नामक उत्कृष्ट ग्रन्थ पाठकों-को पहले अर्पण कर सकें।

विनीत

प्रकाशक

विषय सूची

विषय	पृष्ठ

विवेक-वचनावली

जातीय अवनतिका कारण और उसके उन्नत होनेके उपाय।

१—भारतवर्षमें आजकल जाति-पांतिका जो भेदभाव है वह वास्तविक नहीं है; सच पूछो तो वह तो जातिकी उन्नतिके मार्गमें एक प्रकारका जबर्दस्त विघ्न है। वैसे तो प्रत्येक व्यक्तिकी अलग अलग जाति है। (पुराणोंसे भी यही बात सिद्ध होती है कि एकही बापके बेटे, अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार, विभिन्न जातियोंमें विभक्त हो गये हैं।) जातिकी वास्तविक उन्नति और उसकी विचित्र गतिकी स्वाधीनताको आधुनिक जातिभेद आगे नहीं बढ़ने देता। जड़ जमी

हुई कोई भी प्रथा अथवा किसीको वंश परम्परासे प्राप्त विशेष सुविधा, जातिके वास्तविक प्रभावको बेरोक-टोक बढ़ने नहीं देती। पुरानी रीति और विशेष सुभीते जातिको लकीरके फ़क़ीर बने रहनेके लिए वाध्य करते हैं। और बन्धनोंसे बुरी तरह जकड़ी हुई कोई जाति जब विचित्रता दिखाना छोड़ देती है—नये रास्तेसे दूर रहकर अपने पुराने रास्तेकोही धूल छाननेमें अलमस्त बनी रहती है—तब फिर उसका नाश हो जाना साधारण बात है। इसलिए मैं अपने देश-बन्धुओंसे यह कहना चाहता हूं कि जातिका बन्धन तोड़ देनेसेही, तेलीका काम तँबोलीके करनेसेही, भारतका अधःपात हुआ है। समाज-मे जिसने घर कर लिया है ऐसी प्रत्येक कुलीनता अथवा विशेष सुविधाओंसे लाभ उठानेवाले सम्प्रदायही जातिकी उन्नतिके मार्गमें रोड़े हैं; ऐसी कुलीनता अथवा ऐसे सम्प्रदाय जाति नहीं बने जा सकते। जातिके अपना प्रभाव फैलाने

और उसके मार्गके सब बाधा-विघ्न हटा देने-परही हमारा उत्थान होगा।

२—उन्नतिके लिए पहले स्वाधीनताकी जरूरत है। आपके पुरुषाओंने आत्मिक स्वाधीनता दी थी, यह उसीका परिणाम है कि धर्मकी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई और उसका विकास हुआ। किन्तु उन्होंने देहको स्वाधीनता नहीं दी, उसे सैकड़ों तरहके बन्धनोंसे जकड़ रक्खा इसीसे समाजका विकास नहीं हुआ।

३—उन्नतिके लिए स्वाधीनता प्रधान सहायक है। मनुष्यके लिए जिस प्रकार सोचने और सोचकर प्रकट करनेकी स्वाधीनता होनी आवश्यक है उसी तरह उसे खाने-पीने, पहनने ओढ़ने, देने-लेने और विवाह आदि अन्यान्य कामोंकी भी स्वाधीनता होनी चाहिए। पर शर्त यह है कि उसकी स्वाधीनतासे किसीका रत्तीभर भी बुरा न हो।

४—सब बातोंकी स्वाधीनताके मानी हैं मुक्तिकी ओर बढ़ना और यही पुरुषार्थ है। उस काममें सहायता करना परम पुरुषार्थ है जिससे और लोग शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वाधीनताकी ओर बढ़ें, और अपनी भी यही दशा हो। इस स्वाधीनताकी स्फूर्तिमें जिन सामाजिक नियमोंके द्वारा बाधा पड़ती है वे अकल्याणकर हैं, बुरे हैं; इसलिए ऐसे नियमोंको शीघ्र नष्ट करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

५—कोई भी व्यक्ति अथवा जाति किसी अन्य जातिसे बिलकुल अलग रहकर जीवित नहीं रह सकती। और जहां कहीं श्रेष्ठता, पवित्रता अथवा नीति (Policy) सम्बन्धी अमूलक धारणाओंके चक्करमें पड़कर ऐसी चेष्टा की गयी है, वहां जिस जातिने अपनेको अलग कर लिया उसीने उसका कड़ुवा फल चक्खा।

६—जातिके चारों ओर आचार-विचारोंका यह घेरा रहनेसेही भारतका अधःपतन हुआ

हैं। रीति-रवाजोंसे बेतरह चिपटे रहनाही हमारे नीचे गिरनेका एक प्रधान कारण है। प्राचीन कालमें इन आचार-विचारोंका पालन इसलिए किया जाता था जिससे कि हिन्दू लोग चारों ओर फैले हुए बौद्धोंके संस्पर्शसे बचे रहें। औरोंसे घृणा करनाही इसका आधार है। और जो औरोंसे घृणा करता है वह अवनतिके गड्ढेमें गिरनेसे किसी तरह भी नहीं बच सकता।

७—कोई भी व्यक्ति, कोई भी जाति दूसरेसे घृणा करेगी तो जीती न बचेगी। भारत-वासियोंने जबसे म्लेच्छ शब्द निकाला और अन्यान्य जातियोंसे सब तरहका हेल मेल करना छोड़ दिया उसी घड़ीसे भारतके भाग्यमें भयङ्कर सर्वनाशका आरम्भ हो गया। अपने मनसे ऐसे भाव बिल्कुल निकाल डालो।

८—पाश्चात्य जातियोंने जातीय जीवनके जो अनोखे महल बनाये हैं उनका पाया चरित्र रूपी खम्भोंपर स्थित है। जबतक हम ऐसे ऐसे

सैकड़ों चरित्र उत्पन्न नहीं कर सकते तबतक इस शक्ति अथवा उस शक्तिसे चिढ़ने या शोर करनेसे कुछ लाभ नहीं।

९—लेन देन प्रकृतिका नियम है। भारत यदि फिर अपना सिर ऊँचा करना चाहता है तो उसे अपना ऐश्वर्य निकालकर संसारकी सारी जातियोंमें—बेबूझ—वितरण कर देना चाहिए, लुटा देना चाहिए और उसके बदलेमें जो कुछ मिल जाय उसे ग्रहण करनेके तैयार रहना चाहिए।

१०—हमारी जातिने अपनी विशेषता गँवा दी है, इसी कारण भारतमें इतने दुःख और कष्ट हैं। अब हमें वह उपाय करना है जिससे कि उस जातीय विशेषताका विकास हो। इसके लिए हमें नीच जातियोंको उठाना होगा। हिन्दू मुसलमान और क्रिस्तान सभीने उन्हें पैरों तले कुचल डाला है। अब उन्हें उठानेकी जो शक्ति है वह हमें अपने भीतरसे लानी होगी—असली

हिन्दुओंकोही यह काम करना पड़ेगा। संसारमें जहां भी जो कुछ दोष देखे जाते हैं वे न तो उन देशोंके हैं और न वहांपर माने जानेवाले धर्मके ; उन दोषोंकी उत्पत्ति इसलिए हुई है कि धर्मका यथार्थ रीतिसे पालन नहीं किया गया। फलतः धर्मका कुछ भी दोष नहीं, दोष तो मनुष्योंकाही है।

११—तुम लोग धर्मपर विश्वास करो या न करो, किन्तु यदि जातीय जीवनको अक्षुण्ण रखना चाहो तो तुम्हें धर्मकी रक्षा करनेके लिए तत्पर होना पड़ेगा। एक हाथसे खूब दृढ़तासे धर्मको पकड़ो और दूसरा हाथ इसलिए बढ़ाओ कि जो कुछ अन्यान्य जातियोंके यहां सीखने लायक़ है सीख लो। किन्तु याद रक्खो, जो कुछ भी सीखो उसे हिन्दू जीवनके मूल आदर्शके अनुरूप बना लो।

१२—हमें आगेकी ओर बढ़नाही होगा, किन्तु उस टूटे फूटे मार्गसे नहीं जिसे स्वधर्मसे

छोड़ देनेवालोंने और पादड़ियोंने बतलाया है। हमें तो अपने भावसे और अपनेही मार्गपर उन्नति करनी होगी।

१३—वीर्य—वीर्यही साधुता है और दुर्बलताही पाप है। यदि उपनिषदोंमें कोई ऐसा शब्द है जो वज्रकी भांति जोरसे, अज्ञानकी ढेरीपर गिरकर उसे एकदम छिन्न भिन्न कर डाले तो वह शब्द है "अभै:"—निडर हो जाना। यदि विश्वको कोई धर्म सिखाना है तो वह यही "अभै:" है; इसी मूलमन्त्रका आश्रय लेना होगा, क्योंकि डरही पाप है और यही अध:पातका निश्चित कारण है।

१४—वीर्यवान्-बलवान् बननेकी चेष्टा करो। अपने उपनिषद्—उसी बलप्रद, आलोकप्रद दिव्य दर्शनशास्त्रका फिर अवलम्बन ग्रहण करो, और मजेदार लेकिन दुर्बलता बढ़ानेवाले विषयोंको छोड़ो। ये उपनिषद् रूपी बहुत बड़े सत्य सहजही समझमें आजाने योग्य हैं। जिस

तरह तुम्हारे अस्तित्वको सिद्ध करनेके लिए और किसी भी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं उसी तरह उपनिषदोंका हाल है, ये भी सहजही समझमें आ सकते हैं। तुम्हारे आगे उपनिषदोंके यही सत्य तत्व मौजूद हैं, इनको ग्रहण करो। इन्हें प्राप्त करके कार्य रूपमें परिणत करो। ऐसा करनेसे अवश्य ही भारतका उद्धार होगा।

१५—इस समय हमें शक्ति सञ्चार करनेकी आवश्यकता है। हम बिलकुल निर्बल हो गये हैं। इसीसे हमारे यहां गुप्तविद्या, जादूटोना और भूत-चुड़ैलकी लीलाको भी जगह मिल गयी है। सम्भव है इसमें कोई महासत्य निहित हो, किन्तु इन्होंने हमें करीब करीब चौपट कर डाला है।

१६—कमजोर दिमाग कुछ भी नहीं कर सकता; अब हमें ऐसा रद्दी दिमाग बदल डालना होगा और अपने मस्तिष्कको बदल लेना पड़ेगा। तुम लोग बलवान् बनो, गीताका पाठ करनेकी अपेक्षा यदि तुम फुटबाल खेलो तो स्वर्गके बहुत

नजदीक पहुँच सकते हो। तुम्हारा शरीर जरा तगड़ा हो जायगा तो तुम पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक गीताको समझ सकोगे। तुम्हारा खून जरा ताजा रहने लगे तो तुम श्रीकृष्णकी महती प्रतिभा और महान् वीर्यको अच्छी तरह समझोगे।

१७—हम ऐसे आदमियोंको चाहते हैं जिनके शरीरकी नसें लोहेकी तरह और स्नायु ईस्पातकी तरह मजबूत हों। उनकी देहमें ऐसा मन हो जिसका संगठन बज्रसे हुआ हो। हमें चाहिए पराक्रम, मनुष्यत्व, क्षत्र-वीर्य और ब्रह्मतेज।

१८—सत्य और लोकाचारके बीच मेल रखनेका भाव स्पष्टही कापुरुषताका फल है। वीर बनो। जो लोग हमारे बाद काम सँभालें उन्हें सबसे पहले साहसी होना चाहिये। वे किसी भी तरह और किसी भी कारणसे तिलभर भी कच्चे (लचर) न रहें। परमश्रेष्ठ सत्यको देश-भरमें—क्या ब्राह्मण और क्या चाण्डाल—सबके

बीच वितरण करो। अपमान अथवा अप्रिय विरोधकी चिन्तासे जरा भी डरनेकी जरूरत नहीं। सैकड़ों प्रलोभनोंपर विजय प्राप्त करके, कमजोरियोंको दबाकर, यदि तुम सत्यकी सेवा कर सको तो सचमुच तुममें एक ऐसा दिव्य तेज भर जायगा कि उसके सामने, तुम्हें जो कुछ असत्य जँचता है उसका उल्लेख करनेकी हिम्मत औरोंको न होगी। लोग झख मारकर सत्यका आदर करेंगे। भरपूर निष्ठाके साथ यदि तुम अडिग होकर चौदह वर्षतक समान भावसे सत्यकी सेवा करते रहो तो इसके बाद तुम जो कुछ कहोगे उसे लोग लाचार होकर सुनेंगे और विश्वास करेंगे। इस दशामें देशकी अशिक्षित जनतापर कल्याणही कल्याणकी वर्षा होगी। उनके सारे बन्धन कट जायँगे और समूचा देश उन्नत हो जायगा।

१९—देशके सर्वसाधारणोंका अपमान करनाही हमारा प्रबल जातीय पाप है और यही

है हमारी अवनतिका एक कारण। जबतक भारतकी जनता उत्तमरूपसे शिक्षित नहीं होती, जबतक उसे खानेको अच्छी खूराक भरपेट नहीं मिलती और तन ढकनेको वस्त्र नहीं मिलते तथा जबतक कुलीन एवं बड़े आदमी भली भांति उनकी सँभाल नहीं करते तबतक राजनीतिका कितनाही आन्दोलन क्यों न किया जाय, कुछ भी फल न होगा। यदि हमें सचमुच भारतका पुनरुद्धार करनेकी इच्छा है तो हमें जनताके लिये अवश्यही काम करना होगा।

शिक्षा।

१—क्या पोथियां पढ़ लेनाही शिक्षा है? नहीं। तो क्या अनेक प्रकारका ज्ञान प्राप्त करनेका नाम शिक्षा है? नहीं। जिसकी सहायतासे इच्छाशक्तिका वेग और स्फूर्ति अपने वश हो जाय और जो मनोरथ सफल हो सकें वही शिक्षा है।

२—मस्तिष्कमें अनेक तरहका ज्ञान भर लेना, उससे कुछ काम न लेना और जन्मभर वाद विवाद करते रहनेका नाम शिक्षा नहीं है। अच्छे आदर्श और अच्छे भावोंको काममें लाकर लाभ उठाना चाहिये, जिससे वास्तविक मनुष्यत्व, चरित्र और जीवन बन सके।

३—यदि तुम केवल पांच अच्छे भावोंको पक्का करके उनसे काम लो तो तुम्हारी शिक्षा उनसे कहीं बढ़कर कहलायगी जिन्होंने कि एक समूचा पुस्तकालय रट लिया है।

४—वर्तमान शिक्षा-प्रणाली मनुष्यत्वकी शिक्षा नहीं देती, गठन नहीं करती; वह तो एक बनी बनायी चीजको तोड़ना-फोड़ना जानती है। ऐसी अनवस्थामूलक अथवा अस्थिरताका प्रचार करनेवाली शिक्षा—अथवा वह शिक्षा जो केवल 'नेति' भावकोही फैलाती है, किसी कामकी नहीं। वह तो मौतसे भी भयङ्कर है।

५—हमें अपने देशकी आध्यात्मिक शिक्षा और सभी प्रकारकी ऐहिक शिक्षा अपने हाथमें लेनी होगी और उस शिक्षामें भारतीय शिक्षाकी सनातन गति स्थिर रखनी होगी। साथही सनातन प्रणालीको यथासम्भव ग्रहण करना पड़ेगा।

६—कुछ इम्तहान पास कर लेना अथवा धुँवाधार व्याख्यान देनेकी शक्ति प्राप्त कर लेना शिक्षित हो जाना नहीं कहलाता! जिस विद्याके बलसे जनताको जीवन संग्रामके लिये समर्थ नहीं किया जा सकता, जिसकी सहायतासे मनुष्यका चरित्र-बल परोपकारमें तत्पर और सिंहकासा साहसी नहीं किया जा सकता, क्या वह शिक्षा है? शिक्षा तो वही है जो मनुष्यको अपने पैरों खड़ा होना सिखाती है।

७—हमें ऐसा उपाय करना होगा जिससे हमारे युवकोंको वेदों, अनेक दर्शनों और भाष्य-ग्रन्थोंकी शिक्षा प्राप्त हो; साथही अन्यान्य अवैदिक धर्मोंके तत्व भी उन्हें समझा दिये जायँ

ताकि उन्हें घरका भी ज्ञान हो जाय और बाहरकी बातोंसे भी अपरिचित न रहें ।

८—चाण्डालको विद्या पढ़ाना जितना आवश्यक है उतना ब्राह्मणोंको नहीं । यदि ब्राह्मणके बालकके लिये एक शिक्षककी आवश्यकता है तो चाण्डालके बालकको दस शिक्षक चाहिये, क्योंकि प्रकृतिने स्वभावसे ही जिसे तेज नहीं बनाया है उसे सहायताकी उतनीही अधिक आवश्यकता है । जिसके सिरमें काफ़ी तेल लगा हुआ है उसमें और भी तेल लगाना पागलपन है । दरिद्र, पद-दलित, मूर्ख—यही तुम्हारे ईश्वर हों । इन्हींकी तुम सेवा करो ।

९—किसीसे बहस-मुबाहसा करनेकी जरूरत नहीं । तुम्हें जो कुछ सिखाना है सिखाओ, औरोंकी बातोंमें मत उलझो । औरोंको अपनी अपनी धुनमें मस्त रहने दो । 'सत्यमेव जयते नानृतम्, तदा किं विवादेन ?' जब सत्यकीही जीत होती है तब फिर विवाद करनेसे मतलब ?

स्त्रीशिक्षा

१—नियम तथा नीतिसे जकड़ कर इस देशके पुरुषोंने स्त्रियोंको बिलकुल Manufacturing Machine (सन्तान बच्चे पैदा करनेकी मैशिन) बना रक्खा है। साक्षात महामायाकी इन प्रतिमाओं (स्त्रियों) को यदि उन्नत न करो, जागृत न करो तो तुम्हारे लिए और कौनसा उपाय है ?

२—तुम्हारी जातिका जो इतना अधः-पतन हुआ है उसका प्रधान कारण शक्तिकी इन प्रधान मूर्त्तियोंका अपमान करना है। मनुने कहा है "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।" जहां स्त्रीजातिका आदर नहीं किया जाता, जहां स्त्रियोंका जीवन निरानन्दमें बीतता है उस देशके उन्नत होनेकी कुछ भी आशा नहीं।

इसलिए पहले इन्हींको उठाना होगा—इनकी उन्नतिके लिए आदर्श मठोंकी स्थापना करनी होगी।

३—स्त्रीजातिका अभ्युदय हुए बिना भारतकी भलाई होनेकी सम्भावना नहीं है। पक्षी कहीं एक पंखसे भी उड़ सकता है? इसी लिए रामकृष्ण अवतारमें स्त्री-गुरु ग्रहण किया गया, इसीके लिए नारीभावकी साधनाकी गयी और इसीके लिए मातृभाव—जगद्धात्रीके भावका प्रचार किया गया है। इसीके लिए स्त्री मठ स्थापित करनेका हमारा पहला प्रयत्न है। उस मठमें स्त्रियोंका ऐसा संगठन होगा जिससे वे गार्गी, मैत्रेयी और इनसे भी अधिक उन्नतर भावपूर्ण हों।

४—शिक्षासे मतलब कुछ शब्द लिखा पढ़ा देनेसे नहीं है। शिक्षा तो हमारी वृत्ति और शक्तियोंके विकाशका नाम है, अथवा शिक्षा से मतलब व्यक्तियोंको इस तरह संगठित करने

से है जिससे कि उनकी इच्छा सद्विषयोंकी ओर दौड़े और कार्य भली भांति सिद्ध हों। इसी प्रकारकी शिक्षा पाने पर हमारे भारतकी भलाई करनेमें समर्थ निडर महिलाओंका अभ्युदय होगा—वे संगमित्रा, लीलावती, अहल्या-बाई, मीराबाई और दमयन्ती प्रभृतिका पदानु-सरण करनेमें समर्थ होंगी; वे पवित्र, स्वार्थकी छूतसे अछूती वीर-नारियां होंगी—भगवत्‌के चरण कमलोंका स्पर्श करनेसे उनमें वीरताका प्रमाण होगा—और वे वीर-प्रसविनी होनेकी पात्र होंगी।

५—लड़कियोंको धर्म, शिल्प, विज्ञान, घर-गृहस्थीके काम, रसोई, सीना, पिरोना, शरीर-पालन—इन सभी विषयोंका थोड़ा बहुत मर्म पहले सीखना होगा। नाटक, उपन्यास और किस्से कहानी की रद्दी पुस्तकें उन्हें छूने को भी न दी जायं। सिर्फ पूजा-पाठ सिखलानेसे ही काम न चलेगा, सब बातोंमें उनकी आंखें

खलानी होगी। आदर्श नारी-चरित्र सभी लड़कियों को सीखना होगा। सावित्री, दमयन्ती लीलावती, खना (इसने ज्योतिष शास्त्रका असाधारण ज्ञान प्राप्त किया था) और मीराबाई के जीवन-चरित्र की खूबी लड़कियोंको इसलिए समझानी होगी जिससे वे अपने जीवनको ऐसे ही उत्तम सांचेमें ढाल सकें। लड़कियोंको धर्मात्म और नीति-परायण बनाना होगा। ऐसी चेष्टा करनी होगी जिससे वे आगे चल कर उत्तम गृहिणी हो सकें। इन स्त्रियोंकी सन्तान आगे इन सारी बातोंमें और भी उन्नति कर सकेगी। जिनकी माताएं शिक्षिता और नीति-परायण होती हैं उन्हींके यहां बड़े लोग जन्म लेते हैं।

कर्म और कर्मी

१—भगवान्ने बहुत ही उत्तमरूपसे अपने को छिपा रक्खा है। इसलिए उनका काम भी

सबसे आला है। इसी तरह जो अपनेको बिलकुल गुप्त रख सकते हैं उन्हींके हाथों सबसे अधिक काम होते हैं। पहले अपने आपको जीतो, बस फिर सभी तुम्हारे चरणाश्रित हो जायंगे।

२—जिन्होंने अपने तईं ईश्वरके हवाले कर दिया है वे पूर्वोल्लिखित कर्म करनेवालोंकी अपेक्षा संसारके भलेके लिए बहुत अधिक काम करते हैं। जिसने अपनेको बिलकुल शुद्ध कर लिया है ऐसा एक भी आदमी हज़ार धर्म-प्रचारकोंके मुकाबलेमें कहीं बढ़ कर काम करता है। चित्तकी शुद्धि और मौन रहनेसे ही बातमें ज़ोर आजाता है।

३—भगवान्ने कृष्णावतारमें कहा है कि सभी प्रकारके दुःखोंका कारण 'अविद्या' है। निष्काम कर्म करनेसे चित्त शुद्ध होता है।

४—कर्म वही है जिसके द्वारा आत्मभावका विकाश हो, और जिसके द्वारा अनात्मभावका विकाश हो वही अकर्म है।

५—अतएव व्यक्तिगत, देशगत और काल-गत कर्म—अकर्मका साधन करो।

६—यज्ञ आदि कर्म प्राचीन समयके लिए उपयुक्त थे, इस समयके लिए नहीं।

७—मुक्ति और भक्तिके भावको दूर हटा दो। दुनियामें यही एक रास्ता है—परोपकाराय सतांहि जीवितं, परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् (साधुओं का जीवन परोपकारके लिए है, प्राज्ञ लोग दूसरोंके लिए सब कुछ त्याग स्वीकार करें।) तुम्हारा भला करनेसे ही हमारा भला होगा, और उपाय नहीं है। अतएव काममें जुट जाओ।

८—जो भला चाहो तो घण्टाको गंगाके हवाले करके साक्षात् भगवान् नारायणकी—मानव देहधारी प्रत्येक मनुष्यकी पूजा करो। विराट् और सराट्—विराटरूप यह संसार है—उसकी पूजा है उसकी सेवा करना, इसका नाम कर्म है ; घण्टा बजाना और चमर डुलाना कर्म

नहीं—और रसोई परोसी हुई थाली सामने रख कर दस मिनिट तक बैठे रहें या आध घंटे तक, इस विचारका नाम भी कर्म नहीं—यह तो निरा पागलपन है।

९—चालाकीसे कोई बड़ा काम नहीं होता। प्रेम, सचाई पर प्रीति और सुदीर्घ पराक्रमकी सहायतासे सारे काम सिद्ध होते हैं। 'तत्कुरु पौरुषम्।' अब उद्योग करो।

१०—Strike the iron while it is hot अर्थात् लोहा जब तक गरम है तभी तक उस पर चोट लगानी चाहिए। सुस्तीकी कोई जरूरत नहीं। ईर्ष्या और अहंताको सदा के लिए गंगामें डुबा दो। कार्यक्षेत्रमें महाशक्ति के साथ आ जाओ और पूरा जोर लगाकर काम में जुट जाओ Work, work, work (काम, काम, काम) बस, यही मूल मंत्र है।

११—शरीर तो एक दिन जानेको ही है तो फिर यह आलसियोंकी तरह क्यों जाय?

जंग लगकर मरनेकी अपेक्षा घिस घिस कर—कुछ करके—मरना कहीं अच्छा है। मर जाने पर हड्डियां जादूके खेलमें लगेंगी, इसकी चिन्ता करना व्यर्थ है।

१२—वही काम भला है जो प्राणी के ब्रह्म भावको धीरे धीरे विकासित करनेमें सहायक होता है, और जो काम उसमें विघ्न डालता है वही बुरा है। ब्रह्मभावको परिस्फुट करनेका हमारा एकमात्र उपाय है—उस विषयमें अन्य व्यक्तिको सहायता करना। यद्यपि प्रकृतिमें विषमता होती है फिर भी सभीके लिए एक सा सुभीता रहना चाहिए। किन्तु यदि किसीको कम और किसीको अधिक सुभीता देना ही पड़े तो बलवान्की अपेक्षा दुर्बलको ही दिया जाय।

१३—संसारमें हमेशा दाता बनो—दाताका आसन ग्रहण करो। सर्वस्व दे डालो किन्तु कुछ बदलेकी इच्छा न करो। प्रेम दान

करो, सेवा दान करो। जो कुछ तुम देना चाहते हो दे दो किन्तु खबरदार, कुछ एवजकी चाह न करना।

आहार

१—"आहार-शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः" इस श्रुति का अर्थ करते हुए शङ्कराचार्यने कहा है—'आहार' से मतलब 'इन्द्रियोंके विषय' से है; और श्रीरामानुज स्वामी 'आहार' का अर्थ खाद्य पदार्थ मानते हैं? हमारी समझमें दोनों ही आचार्योंके मतका सामञ्जस्य कर लेना ठीक होगा। रातदिन सिर्फ खाद्य अखाद्यपर माथा-पची करता रहे या इन्द्रिय-संयमकी भी चेष्टा करे? इन्द्रियोंके संयमको ही मुख्य उद्देश मानना होगा; और उसी इन्द्रिय-संयमके लिए ही भले-बुरे खाद्य अखाद्यका थोड़ा बहुत विचार करना होगा। शास्त्रोंकी रायसे खाद्य-सामग्री

तीन प्रकारके दोषोंसे दूषित होती है और इसी कारण वह परित्याग्य है। (१) जाति दुष्ट— जैसे लहसुन, प्याज आदि; (२) नियम-दुष्ट— जैसे हलवाईकी दूकानकी मिठाई आदि, जिसमें मुट्ठीभर मक्खियां मरी पड़ी हैं और रास्तेकी धूलका तो हिसाब ही नहीं कि उसमें कितनी मिल गयी है; (३) आश्रय-दुष्ट—ऐसे खाद्य पदार्थ जिन्हें असत्पुरुषोंने छू लिया है। हमेशा भली भांति देख लेना होगा कि खाद्य-वस्तु जाति दूषित अथवा निमित्त दूषित तो नहीं होगयी है। किन्तु आजकल उस ओर किसीका ध्यान नहीं है, अन्तिम दोष पर ही अकाण्ड-ताण्डव होता रहता है, हाला कि उसके तत्त्वको योगीके सिवा प्रायः और कोई समझ ही नहीं सकता। छुवा छूतका रौला मचाकर छूत-पन्थी नाहक नाक सिकोड़ा करते हैं। उस पर भी भले बुरे आदमीका विचार नहीं—गलेमें सूतके तागे भर होने चाहिएं,

बस फिर उसके हाथका छुवा खानेमें छूत-मार्गियोंको कुछ उज्र नहीं।

२—इस समय रजोगुणकी आवश्यकता है। लोग बाग आजकल जिन्हें सत्त्वगुणी समझते हैं उनमें पन्द्रह आने आदमी ऐसे हैं जो घोर तमोगुणी हैं। एक आना सत्त्वगुणी मिल जायं तो गनीमत समझो। इस समय आवश्यकता है प्रबल रजोगुणके ताण्डवकी उद्दीपना की। देखते नहीं हो, देश घोर तमोगुणसे पटा पड़ा है। लोगोंको अब मांस मछली खिला कर उद्योगी बनाना होगा, जगाना होगा और उन्हें कार्यतत्पर बना देना होगा। यदि ऐसा न किया जायगा तो सारा देश जड़ हो जायगा—वृक्षों और पत्थरोंकी तरह जड़ हो जायगा। इसीसे कहता हूं कि खूब मांस-मछली खाओ।

३—सत्त्वगुणका जब खूब विकाश हो जाता है तब फिर मांस मछली खाना नहीं

रुचता। किन्तु सत्त्वगुणके प्रकट होनेके लक्षण ये हैं—दूसरोंके लिए अपना सर्वस्व दे डालना कामिनी-कांचन पर आसक्ति बिलकुल न रहना अभिमानका नष्ट हो जाना और अहङ्कार बुद्धिका अभाव। जिसमें ये लक्षण होते हैं उसे फिर animal food (मत्स्य मांस खाने) की इच्छा नहीं होती। और जहां देखो कि मनमें इन गुणोंकी स्फूर्ति तो है नहीं, बल्कि अहिंसाके दलमें भरती हो गये हैं वहां समझ लो कि या तो पाखण्ड है या दिखाऊ धर्म। जब तुम्हें ठीक सत्त्वगुण की अवस्था प्राप्त हो जाय तब तुम आमिषाहार करना छोड़ देना।

४—मांस खानेके कारण तुम पर यदि लोग नाराज हों तो उसी दम छोड़ देना। परोपकार के लिए तो घास खाकर रहना भी अच्छा है।

५—मांस भोजी प्राणी—जैसे सिंह, एक ही चोट करके थक जाता है और सहनशील

बैल दिन भर चलता रहता है, वह चलते चलते ही अपना पेट भी भर लेता है और नींद भी ले लेता है। चंचल, सदा काम काजमें जुटा रहनेवाला यांकी (मार्किन राज्य का आदमी) भात खानेवाले चीना कुलीके मुकाबिलेमें उठ कर काम नहीं कर सकता। सौ बातकी बात यह है कि जब तक क्षात्रशक्ति की प्रधानता रहेगी तब तक मांस खानेकी प्रथा भी रहेगी। किन्तु विज्ञानकी उन्नतिके साथ साथ जब युद्धकी प्रवृत्ति घट जायगी—मार काट कम हो जायगी तब निरामिष-भोजियोंका दल प्रबल होगा।

जीवन और मरण

१—जीवन और मरण एक ही व्यापार एक ही मामले—के जुदा दो नाम हैं; जैसे रुपयेका चेहरा और पीठ ये दो भिन्न भिन्न

नाम हैं, फिर भी असलमें हैं दोनों रुपयेके ही अङ्ग। दोनों ही माया हैं। इस अवस्थाको खोल कर समझानेका और कोई उपाय नहीं है। एक बार बचनेकी, जीवित रहनेकी इच्छा होती है और उसके बाद ही विनाश या मृत्यु की चेष्टा होती है।

२—दुनियामें यदि कुछ पाप है तो वह दुर्बलता है। सभी प्रकारकी दुर्बलता छोड़ दो—दुर्बलता ही मृत्यु है—वही पाप है।

३—जीवनका अर्थ उन्नति है, उन्नति का मतलब हृदयका विस्तार है और हृदयका विस्तार तथा प्रेम एक ही वस्तु है। अतएव प्रेम ही जीवन हुआ और वही एकमात्र जीवनगतिका नियामक है। स्वार्थ-परता ही मृत्यु है, जीवित रहने पर भी प्राणीको यह मृत्यु घेर लेती है और देहान्त हो जाने पर भी यही स्वार्थ-परायणता वास्तवमें मृत्यु स्वरुप है।

४—विस्तार ही जीवन और संकोच ही मृत्यु है। प्रेम ही जीवन और द्वेष ही मृत्यु है। हम जिस दिनसे संकुचित होने लगे, हमने अन्यान्य जातियोंको घृणाकी दृष्टिसे देखना आरम्भ किया उसी दिनसे हमारी मृत्युका श्रीगणेश हो गया; और जब तक हम विस्तारशील नहीं बनते तब तक हम किसी भी तरह मृत्युके पंजेसे अपनेको बचा नहीं सकते। इसलिए हमें पृथिवीकी सभी जातियोंके साथ हेल मेल करना होगा।

५—सभी प्रकारके विस्तारका ही नाम जीवन है और सभी प्रकारकी संकीर्णताका नाम मौत है। जहां प्रेम है वहीं विस्तार है और जहां स्वार्थ-परायणता है वहीं संकोच है। इसलिए प्रेम ही जीवनकी एकमात्र विधि है। जो प्रेमी है वही जीवित है, और जो स्वार्थ साधक है वह मुर्दा है। अतएव जब प्रेम ही जीवनकी एकमात्र विधि है,—जैसे निःश्वास प्रश्वासके

विना प्राण नहीं बच सकते उसी तरह प्रेमके विना जब जीवित रहना असम्भव है—तब, इसी कारण, अकारण प्रेमकी आवश्यकता है।

प्रेम

१—प्रेम कभी निष्फल नहीं जाता। चाहे आज हो, चाहे कल, चाहे सैकड़ों युगोंके पश्चात्—प्रेमकी विजय होगी और जरूर होगी। तो क्या तुम मनुष्य जाति पर प्रेम करते हो? भगवान्‌की खोजमें कहीं जाते हो? दरिद्र, दुखिया और दुर्वल—क्या ये सभी तुम्हारे ईश्वर नहीं? पहले इनकी उपासना क्यों नहीं करते? गंगा किनारे रह कर कूआं किस लिए खोदते हो? प्रेमकी सर्वशक्तिमत्ता पर विश्वास करना सीखो। क्या तुम्हारे हृदयमें प्रेम है? यदि है तो तुम सर्वशक्तिमान् हो। क्या तुम्हें एक भी कामना नहीं—कामनाओंसे बिलकुल विहीन हो? यदि

ऐसा है तो तुम्हारी शक्तिको रोकनेकी सामर्थ्य किसमें है ? अपने चरित्रके बलसे मनुष्य सब जगह विजयी हो सकता है। भगवान् अपनी सन्तानकी रक्षा समुद्रके भीतर भी किया करते हैं। तुम्हारी मातृ भूमि वीर सन्तान मांगती है। तुम लोग वीर बनो।

२—पोथी पत्तरा, विद्या-विद्या, योग, जप, ज्ञान, ध्यान प्रेमके आगे सब धूल समान है। प्रेम ही भक्ति है, प्रेम ही ज्ञान है, और प्रेम ही मुक्ति है। यही पूजा पाठ है, नर नारीका रूप धारण करनेवाले प्रभुकी सेवा पूजा है; और जो कुछ है सब 'नेदं यदिदमुपासते' है।

३—रुपयेकी बदौलत कुछ नहीं होता, न नामसे होता है न यशसे और न विद्यासे; जो कुछ होता है प्रेमसे होता है—बाधा विघ्न रूप वज्रकी तरह दृढ़ प्राचीरमें हो कर एक चरित्र ही मार्ग बना ले सकता है।

४—संसारमें वास्तवमें जो कुछ उन्नति हुई है वह प्रेमकीही शक्तिसे हुई है। दोष देखनेसे, कभी भला काम नहीं किया जा सकता। हजारों वर्ष परीक्षा करके यह देख लिया गया है—निन्दा करनेसे कुछ भी लाभ नहीं होता।

५—जिनकी समदृष्टि हो गयी है वेही ब्रह्ममें अवस्थित माने जाते हैं। सब प्रकार की घृणाका अर्थ है—आत्माके द्वारा आत्माका विनाश। प्रेम ही जीवनका यथार्थ नियामक है। प्रेमावस्थाको प्राप्त करना सिद्धावस्था है; किन्तु हम जितना ही सिद्धिकी ओर अग्रसर होते हैं उतना ही कम काम कर सकते हैं। सात्विक व्यक्ति समझते और देखते हैं कि सब कुछ खिलवाड़ मात्र है, इसीसे वे किसी चीज़में सर नहीं खपाते।

६—निर्विघ्न उद्देश सिद्धिके लिये चटपट कोई काम कर डालना उचित नहीं। सिद्धि प्राप्तिके लिए इन तीन गुणोंकी, पवित्रता,

सहनशीलता और अध्यवसाय—और सबसे अधिक प्रेमकी आवश्यकता है।

धर्म और ईश्वर

१—धर्म और ईश्वर शब्दसे अनन्त शक्ति और अनन्त वीर्यका बोध होता है। दुर्बलता और दासताको छोड़ो। यदि तुम मुक्त स्वभाव हो जाओ, तभी तुम केवल मात्र आत्मा हो; मुक्त-स्वभाव होनेपर अमृतत्व तुम्हारी मुट्ठीमें आ जायगा। मुक्त-स्वभाव होनेवाला ही ईश्वर है।

२—जो धर्म जो ईश्वर विधवाओंके आंसू नहीं पोंछ सकता, अथवा बिना माता-पितावाले अनाथके मुंहमें रोटीका एक टुकड़ा नहीं दे सकता उस धर्म अथवा ईश्वरपर मैं विश्वास नहीं करता। मत-वाद, मत-मतान्तरोंकी चर्चा कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, उसमें कितने ही गम्भीर दार्शनिक तत्त्व क्यों न भरे हों, जबतक

वह मत वा पुस्तकोंमें आबद्ध है तबतक मैं उसे धर्म मानता ही नहीं। हमारी आँखें पीठकी ओर नहीं हैं सामने हैं, अतएव सामनेकी ओर बढ़ो, और जिस धर्मको तुम अपना समझकर गौरव करते हो उसके उपदेशोंको कार्यमें परिणत कर दिखाओ।

३—हिन्दुओंका (आजकलका) धर्म न वेदमें है, न पुराणमें, न भक्तिमें है न मुक्तिमें—धर्म चौक-चूल्हेमें रह गया है। (मौजूदा) हिन्दू-धर्म न विचार-मार्गमें है न ज्ञान-मार्गमें, छूआछूतमें है; "खबरदार, दूर दूर हमें छू न लेना"; बस इसीमें रह गया है। इस छूतके झमेलेमें पड़कर जान न दो "आत्मवत्सर्वे भूतेषु" क्या सिर्फ पोथीमें ही धरा रहेगा? जो मुट्ठीभर अन्न भी गरीबको न दे सकेंगे वे मुक्ति क्या खाक देंगे! जो दूसरोंकी हवा लगनेसे अशुद्ध हो जाते हैं वे औरोंको क्या पवित्र करेंगे। छूआछूत एक प्रकारकी मानसिक व्याधि है, उससे बचे रहो।

४—फिलासफी, योग, तप, देव-मन्दिर, अरवा चावल, केला मूली ये सब व्यक्तिगत धर्म हैं; देश-विशेषके धर्म हैं ; परोपकार ही एकमात्र सार्वजनिक महाव्रत है।

५—मनसा वाचा कर्मणा "जगद्धिताय" बनना पड़ेगा। तुमने पढ़ा है, "मातृदेवो भव, पितृदेवो भव", मैं कहता हूं 'दरिद्रदेवो भव, मूर्खदेवो भव"। दरिद्र, मूर्ख, अज्ञानी और कातर व्यक्ति ही तुम्हारे लिए देवी देवता हों, उन्हीं की सेवाको तुम परम धर्म समझो।

६—मैं न मुक्ति चाहता न भक्ति, मैं महारौरव नर्कमें भी जानेको तैयार हूं "वसन्तवल्लोकहितं चरन्त"—वसन्त जिस तरह संसारका भला करता है उसी तरह भलाई करते रहना मेरा धर्म है।

७—व्यासने कलियुगमें दानको ही एकमात्र धर्म कहा है, और उसमें धर्म-दान सबसे बढ़िया दान है, उससे उतरकर विद्या दान है,

इससे भी नीचे प्राण-दानका नम्बर है और अन्न दान तो सबसे निकृष्ट दान है। अन्न दान हम बहुत कर चुके, हमारीसी दानशील जाति संसार भरमें नहीं है। इस देशमें भिखारीके पास भी यदि मुट्ठीभर अन्न होगा तो वह उसमें आधा दान कर देगा। यह दृश्य केवल भारतवर्षमें ही देखनेको मिलेगा। हम यथेष्ट अन्नदान कर चुके, अब अन्य दो प्रकारके दानमें आगे बढ़ना है—धर्म और विद्या दान।

८—यदि देह मन शुद्ध न हो तो मन्दिरमें जाकर महादेवकी पूजा करना व्यर्थ है। जिनकी देह और मन दोनों पवित्र हैं महादेवजी उन्हींकी प्रार्थना सुनते हैं। जो अशुद्ध स्वभाव होनेपर भी दूसरोंको धर्म सिखानेका दावा करते हैं उनकी बुरी गति होती है। बाह्य पूजा तो मानस पूजाका सिर्फ बाहरी अंग है—मानस पूजा और चित्तशुद्धि ही असल चीज है। यदि यह न हो तो बाहरी पूजा करनेसे कुछ भी लाभ नहीं।

९—चित्तका शुद्ध होना और दूसरोंके भलेके लिए उद्योग करना ही सभी प्रकारकी उपासनाओंका सार है। शिवकी यथार्थ पूजा वे ही लोग करते हैं जो दरिद्र, दुर्बल और रोगी सभीमें शिवका दर्शन करते हैं। और जो सिर्फ मूर्तिमें ही शिवकी पूजा करता है वह निरा प्रवर्तक है। मन्दिरमें जाकर नित्य नियमसे दर्शन करनेवाले भक्तपर भी महादेवजी उतने प्रसन्न नहीं होते, जितने उस व्यक्तिपर जो जाति और धर्मका लिहाज छोड़कर एक भी दरिद्र व्यक्तिकी शिव समझ कर सेवा करता है।

१०—जो पिताकी सेवा करना चाहें उन्हें उनकी सन्तानकी सेवा पहले करनी पड़ेगी। जो महादेवजीकी सेवा पूजा करना चाहें उन्हें महादेवजीकी सन्तानकी सेवा सबसे पहले करनी पड़ेगी, पहले जगतके प्राणियोंकी सेवा करनी होगी। शास्त्रोंमें लिखा है जो लोग भगवानके दासोंकी सेवा करते हैं वही भगवानके श्रेष्ठ दास हैं।

११—पराई सेवा परम पवित्र काम है। इस सत्कर्मके बलसे चित्त शुद्ध होता है और सबके भीतर जो प्रभु निवास करते हैं वे प्रकट हो जाते हैं। वे तो सभीके हृदयमें विराजमान हैं। यदि शीशेके ऊपर धूल पड़ गयी हो या मैल जम गया हो तो उसमें हम अपना स्पष्ट प्रतिबिम्ब नहीं देख सकते। हमारे हृदय रूपी दर्पणपर भी उसी तरह अज्ञान और पापका मैल जम गया है। सबसे बढ़ कर मैल है स्वार्थ परायणता—पहले अपनी फिक्र करना।

१२—ऊँचीसे ऊंची जातिसे लेकर नीचसे नीच जाति 'परिया' (चाण्डाल) तक, सभीको आदर्श ब्राह्मण बननेकी चेष्टा करनी पड़ेगी। वेदान्तका यह आदर्श सिर्फ भारतमें ही सीमाबद्ध न रहेगा, बल्कि सारे संसारका गठन इसी आदर्शके अनुकूल करनेकी चेष्टा करनी होगी। हमारे धर्मका यही लक्ष्य है, यही उद्देश है कि धीरे धीरे सारी मानवजाति आदर्श धार्मिक हो

जाय अर्थात् क्षमा, धृति, शौच, शान्ति उपासना और ध्यान-परायण हो जाय। इस आदर्शके अवलम्बनसे ही मानवजाति धीरे धीरे ईश्वर सायुज्यको प्राप्त होगी।

१३—हमारे देशके बेवकूफोंसे कहो कि आध्यात्मिक विषयमें हम जगतके शिक्षक हैं— फिरङ्गी लोग नहीं। हाँ, संसारी मामलेमें हमें जरूर उनसे शिक्षा ग्रहण करनी पड़ेगी।

अनुभूति

१—अनुभूति—अनुभव करना ही धर्म का प्राण है। कुछ आचार और नियमोंको मानकर सभी चल सकते हैं। कुछ बातोंको मानकर और कुछका परहेज़ रखकर सभी लोग व्यवहार कर सकते हैं, किन्तु अनुभूतिके लिए कितने आदमी व्याकुल होते हैं? व्याकुलता, ईश्वरप्राप्ति अथवा आत्मज्ञानके लिए उन्माद होना ही सच्ची धर्मप्राणता है।

२—असल बात अनुभूतिही है। हजारों वर्षतक गङ्गा स्नान करते रहो, हजारों वर्षतक निरामिष भोजन किया करो—उसके द्वारा यदि आत्मविकाशमें सहायता न मिले तो समझ लेना कि यह सब अकारथ गया। और आचार हीन होनेपर भी यदि किसीको आत्म दर्शन होजाय तो उस अनाचारपर सैकड़ों आचार न्योछावर हैं, वह अनाचार ही श्रेष्ठ है। हाँ, आत्मसाक्षात्कार हो जानेपर भी लोकसंग्रहके लिए आचारोंको कुछ कुछ मानना ठीक है। सारांश, मनको एकनिष्ठ करना चाहिए। एक विषयमें निष्ठा होनेसे मन एकाग्र होता है, अर्थात् मनकी अन्यान्य वृत्तियां शान्त हो जाती हैं और एक ही विषयमें चित्त रम जाता है, बहुतेरे ऊपरी आचार करने और 'विधि-निषेध' के जालको माननेमें ही समय निकल जाता है, आत्म चिन्तन-की फुर्सत ही नहीं मिलती। दिन-रात विधि-निषेध के चक्करमें पड़े रहनेसे आत्माका प्रसार किस

तरह होगा ? जिसे जितनी आत्मानुभूति हो जाती है उसका विधि-निषेध भी उतना ही घट जाता है। आचार्य शङ्कर ने कहा है— "निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिःको निषेधः ?"

माया और जगत्

१—अन्तर्जगत्—जो वास्तवमें सत्य है, वह वहिर्जगत्की अपेक्षा अनन्त गुना वड़ा है और यह वाहरी दुनिया तो उसी सत्य अन्तर्जगत्का छायामय वाहरी प्रकाशमात्र है। यह जगत् न सत्य है और न मिथ्या ही ; सत्यका छाया स्वरूप मात्र है। कविके कथनानुसार "कल्पना—सत्यकी सुनहली छाया है।"

२—हम जब दुःख, कष्ट और संघर्षकी चपेटमें पड़ जाते हैं तव हमें संसार अत्यन्त भयानक स्थान जँचने लगता है। किन्तु हमारी मारपीट और लड़ाई झगड़े जो कुछ हैं ईश्वरकी दृष्टिमें ऐसे खिलवाड़के सिवा और कुछ

नहीं जैसे कि हम दो पिल्लोंको परस्पर खेलते या गुर्राकर काटते देखते हैं तो पहले तो हम उस ओर ध्यान ही नहीं देते—यह समझ लेते हैं कि ये खेल रहे हैं; और बीच बीचमें एक आध बार दाँत या नाखूनका घाव लग जानेपर भी समझ लेते हैं कि इससे ज्यादा नुकसान न होगा। यह सारा संसार केवल खेलके लिए है भगवान्‌को इससे सिर्फ आनन्द होता है। संसारमें कुछ भी क्यों न हुआ करे, वह ईश्वरके आसनको नहीं डिगा सकता।

३—हमारे हृदयमें प्रेम, धर्म और पवित्रताका भाव जैसे जैसे बढ़ता जाता है उसी परिमाणमें हम बाहर प्रेम, धर्म और पवित्रता देखने लगते हैं। दूसरोंके कामोंकी जो निन्दा करते हैं वह वास्तवमें अपनी ही निन्दा है, तुम अपने क्षुद्र ब्रह्माण्डको ठीक करो—तुम्हारे हाथकी बात है;—फिर बृहत् ब्रह्माण्ड भी तुम्हारे लिए अपने आप ठीक हो जायगा।

४—यह जगत् ब्रह्म स्वरूप और सत्य है; किन्तु हम उस दृष्टिसे नहीं देखते। जैसे सीपमें चाँदीका भ्रम जो होता है वैसेही हमें भी ब्रह्ममें जगतका भ्रम हो गया है। इसीका नाम अध्यास है। जैसे कि पहले हमने एक दृश्य देखा था, अब उसीका स्मरण हो आया। जो सत्ता एक सत्य वस्तुके अस्तित्वपर निर्भर करती है उसीको अध्यस्त सत्ता कहते हैं।

५—दुनियावी झमेलोंके बीच जो व्यक्त और अव्यक्त शक्ति है उसको माया कहते हैं। वह मातृस्वरूपिणी माया जबतक हमें छोड़ती नहीं तबतक हम मुक्त नहीं हो सकते।

६—हृदयको समुद्रकी भांति महान् कर लो संसारकी छोटी छोटी बातोंसे ऊपर उठ जाओ यहाँतक कि अशुभ घटना होनेपर भी खूब आनन्द मनाओ। दुनियाको एक तसवीरकी तरह समझो, याद रक्खो कि संसारकी कोई भी वस्तु तुम्हें विचलित नहीं कर सकती।

संसार और अहम्

१—यह संसार एक पिशाचसा है। मानों एक राज्य है और हमारा क्षुद्र अहं-भाव इसका राजा है। इसे हटाकर तनकर खड़े हो जाओ। काम-काञ्चन, मान और यशको त्यागकर दृढ़तासे ईश्वरको पकड़े रहे हो। अन्तमें हम सुख और दुःख होनेपर, बिलकुल उदासीन रहने लगेंगे।

२—संसारको त्यागनेके मानी हैं—इस अहंभावको बिलकुल भूल जाना, इसका खयाल तक न रखना। देहमें रहा जा सकता है किन्तु हमें बिलकुल देहकेही न हो रहना चाहिए। इस 'हम' को बिलकुल नष्ट कर डालना होगा। लोग जब तुम्हें बुरा-कहें तब तुम उनकी भलाईकी कामना किया करो। सोचो तो, वे तुम्हारा कितना उपकार करते हैं; यदि किसीका बुरा हो सकता है तो सिर्फ उन्हीं निन्दकोंका। ऐसी जगह जाओ

जहाँ लोग तुम्हें घृणा करें जिसमें वे लोग तुम्हारे अहं-भावको ठोक पीटकर तुम्हारे भीतरसे निकाल बाहर कर दें—तब तुम भगवानके बहुत नजदीक पहुँच जाओगे।

३—'अहं'को हटा दो, नाश कर दो, भूल जाओ। तुम्हारे भीतर भगवानको काम करने दो यह उन्हींका काम है, उसे वही समझें। हमें और कुछ न करना पड़ेगा—केवल किनारे हट आवें, उन्हें काम करने दें। हम जितना ही हट आवेंगे भगवान उतना ही अधिक हमारे भीतर आवेंगे। कच्चे अहंभावको नष्ट कर डालो, उसी अहंभावको रहने दो जो पक्का है।

४—बड़प्पन दलबन्दी और ईर्ष्याको हमेशाके लिए विदा कर दो। पृथ्वी जैसे सब कुछ सहती रहती है—सर्वसहा है उसी तरह तुम भी बर्दाश्त करना सीखो। इतना कर सकनेसे दुनिया तुम्हारे वशमें हो जायगी।

५—चंचलता और गम्भीरताको एकमें

मिला दो। सबसे हिल मिलकर चलो। अहंभावको दूर हटाओ, किसी सम्प्रदाय अथवा जत्थेके फेरमें मत पड़ो, वृथा तर्क करना महापातक समझो।

आत्मा (ब्रह्म)

१—मुक्ति और समाधि आदिसे सिर्फ ब्रह्मके प्रकाशके मार्गसे रुकावटें अलग हो जाती हैं। वैसे तो आत्मा सूर्यकी तरह सर्वदा जाज्वल्यमान है। अज्ञान मेघोंने सिर्फ उसे ढक रखा है। उन्हीं मेघोंको हटाने और सूर्यका प्रकाशक होने देनेसे ही "भिद्यते हृदयग्रन्थिः" वाली अवस्था प्राप्त होती है।

२—आत्माके स्वरूपका भाव कभी व्यक्त होता है कभी अव्यक्त। एक आत्मा (ब्रह्म) ही विभिन्न उपाधियोंके बीच होकर प्रकाशित होता है। यही वेदोंका सार रहस्य है।

३—सभी प्राणी ब्रह्म स्वरूप हैं। प्रत्येक

आत्मा मानों मेघसे ढका हुआ सूर्य है। एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तिमें यह अन्तर है कि कहीं तो सूर्यपर मेघका घना आवरण है और कहीं कुछ पतला।

४—आत्मामें न लिङ्ग-(स्त्री-पुरुष आदि) भेद है, न जातिभेद। न अपूर्णता।

५—बुद्धावतारमें प्रभुने कहा है कि आधिभौतिक दुःखोंका कारण जाति है, फिर वह चाहे जन्म-गत गुण-गत धन या और किसी भी कारण से हो। आत्मामें न स्त्री-पुरुषका भेद है और न वर्ण, आश्रम आदिका भाव। जिस प्रकार कीचड़से कीचड़ नहीं धुल सकता उसी प्रकार भेद-बुद्धि द्वारा अभेद कैसे साधन हो सकता है?

६—समुद्र जब स्थिर रहता है तब उसे ब्रह्म कहते हैं, और जब उसमें लहरें उठती हैं तब उसे हम शक्ति अथवा माता कहते है, वह शक्ति अथवा महामाया ही देशकाल-

निमित्त स्वरूप है; वही सगुण है और अन्य निर्विशेष या निर्गुण है। पहले रूपमें वह ईश्वर, जीव और जगत् है और दूसरे रूपमें ही अज्ञात और अज्ञेय। उसी निरुपाधिक सत्तासे ईश्वर, जीव और जगत्— यह त्रित्व भाव आया है। सारी सत्ता, जो कुछ कि हम जान सकते हैं, यही ऐक्यात्मकत्व है—यही विशिष्टाद्वैत है।

७—जीवात्मा और परमात्माका अभेद भाव अथवा समत्व भावकी प्राप्ति ही समाधि है।

८—सिर्फ ब्रह्म ही ब्रह्म है; न जन्म है न मृत्यु है, न दुःख है, न कष्ट है, न नरहत्या है न कोई परिणाम है। न भला है न बुरा है—जो कुछ है ब्रह्म ही ब्रह्म है। हमें रस्सीमें सांपका भ्रम हो गया है। भ्रम हमारा ही है।

६—जैसे दूधके प्रत्येक बिन्दुमें घी मौजूद है वैसे ही जगत्में सर्वत्र ब्रह्म व्याप्त है। किन्तु मन्थन करनेसे एक विशेष स्थानमें उसका प्रकाश होता है। जिस तरह मथनेसे दूधसे मक्खन

निकल आता है वैसे ही ध्यान करनेसे आत्मामें ब्रह्म साक्षात्कार होता है।

१०—जैसे घिसकर आग पैदा की जा सकती है, वैसेही ब्रह्मको भी मथकर प्रकाश किया जा सकता है।

जगज्जननी (कुल कुंडलिनी)

१—सर्व शक्तिमत्ता, सर्व व्यापकता और अनन्त दया उसी जगज्जननी भगवतीके गुण हैं। जगतमें जितनी शक्ति है, वह उनकी समष्टिस्वरूपिणी है। जगमें जितनी शक्तिका विकाश दिखाई देता है, सभी वही जगदम्बा है। वह प्राणरूपिणी है, वही बुद्धिरूपिणी है, वही प्रेमरूपिणी है। वह जगभरमें समायी हुई है, और जगसे बिल्कुल न्यारी है।

२—वह चाहे जब जिस रूपसे हम लोगोंके सामने प्रकट हो सकती है। उस जग जननीके नाम, रूप दोनों भी रह सकते हैं, अथवा रूप

न रहकर सिर्फ नाम ही रह सकता है। और इन भिन्न भावोंसे उसकी उपासना करते करते हम ऐसी अवस्थाको पहुंच जाते हैं जहां न नाम है न रूप, केवल शुद्ध सत्ता मात्र विराज रही है।

३—जगज्जननी भगवती ही हमारे भीतर सोयी हुई कुण्डलिनी है—उसकी उपासना किये विना हम कभी अपनेको नहीं पहचान सकते।

४—हमीं शिव स्वरूप, अतीन्द्रिय अविनाशी और ज्ञानस्वरूप हैं। प्रत्येक व्यक्तिके भीतर अनन्त शक्ति मौजूद है; जगदम्बासे बिनती करनेसे यह शक्ति तुममें प्रकट हो जायगी।

५—उस जगदम्बाके एक कण—एक बून्द कृष्ण हैं, और कणभर बुद्ध, और कणभर ईसा। हमारी पार्थिव जननीमें उसी जगन्माताकी जो एक किरण प्रकाशित है, उसीकी उपासनासे महत्व प्राप्त होता है। यदि परम ज्ञान और आनन्द चाहते हो तो उसी जगज्जननीकी उपासना करो।

गुरु

१—जिस व्यक्तिकी आत्मामेंसे दूसरेकी आत्माको शक्ति पहुंचती है, उसे गुरु कहते हैं।

२—जो तुम्हारा भूत भविष्य बतला सकता है, वही तुम्हारा गुरु है।

३—जो विद्वान्, पापरहित, काम वासना हीन, श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञाता है वही सच्चा सद्गुरु है।

४—जो इस संसारमायासे पार उतार दे, जो कृपा करके सारी मानसिक आधिव्याधियों को मिटा दे वही यथार्थ गुरु है। जो वेद वेदान्त के पण्डित हैं, जो ब्रह्मज्ञ हैं, जो दूसरोंको अभयके किनारे ले जा सकते हैं वही असली गुरु हैं, उन्हें पाते ही चेले हो लो, 'नात्र कार्या विचारणा'।

५—गुरुके सम्बन्धमें हम लोगोंको पहली बात यह देखनी चाहिए कि वह शास्त्रोंका मर्म जानते हों। दूसरे, गुरुका बिल्कुल पापरहित होना आवश्यक है। तीसरे, गुरुका उद्देश्य देखना होगा। कहीं ऐसा न हो कि वह नाम, अथवा

अन्य किसी उद्देश्यसे शिक्षा देते हों। केवल स्नेह— अपने पर अकपट स्नेह ही के कारण शिक्षामें प्रवृत्ति उनका उद्देश्य होना चाहिए।

समाजसंस्कार और नेता

१-सामाजिक रोगोंका निवारण बाहरी चेष्टाओं-से नहीं होता, मनपर असर डालनेकी कोशिश होनी चाहिए। लम्बे लम्बे जबानी जमा खर्चोंसे कुछ नहीं होता, समाजके दोष दूर करनेके लिए प्रत्यक्ष रूपसे चेष्टा न करके शिक्षा दे कर परोक्ष भावसे चेष्टा करनी पड़ेगी। पहले इस तत्त्वको समझकर मनको शान्त करना पड़ेगा, दिमागको ठंढा रखना पड़ेगा।

२—समाज-संस्कार चाहने वाले कहां हैं? पहले उन्हें तैयार करो। फिर संस्कार-प्रार्थियों की ओर निगाह फेरो। मुट्ठीभर आदमियोंके किसी विषयको बुरा कह देनेसे अधिकांश आदमी उसे बुरा नहीं समझते। ये इने गिने

आदमी दूसरे सब लोगोंपर अपने मनमाने संस्कार लादनेकी कोशिश करते हैं दुनियामें इससे बढ़कर अत्याचार और क्या होगा ? थोड़े आदमियोंकी दृष्टिमें कुछ बातें बुरी जंचनेसे ही सारी जातिके हृदयमें उसका प्रभाव नहीं पड़ता। क्यों ? पहले सारी जातिको सिखाओ, व्यवस्था बनानेकी शक्ति रखनेवाला एक दल तैयार करो, विधान आपही आप आ जायगा। पहले जिस ताकतसे जिसकी सम्मतिसे विधान गढ़ा जायगा उसे पैदा करो। इस समय राजा नहीं है। जिस नयी शक्तिसे जिस नये सम्प्रदायकी सम्मतिसे नयी व्यवस्था बनेगी वह लोक शक्ति कहां है ? पहले उस लोकशक्तिका गठन करो। इससे मालूम होता है समाज संस्कारका पहला काम लोकशिक्षा है। यह शिक्षा पूरी न हो लेनेतक रुकना पड़ेगा।

३—भारतमें चाहे जो संस्कार या उन्नति करनेकी चेष्टा की जाय, पहले धर्म्म प्रचारकी

जरूरत है। भारतको सामाजिक वा राज नैतिक प्रवाहमें बहाना हो तो पहले आध्यात्मिक लहरोंमें बहाना पड़ेगा। सबसे पहले हमें इस काममें लगना पड़ेगा कि हमारे उपनिषदों पुराणों तथा और शास्त्रोंमें जो अपूर्व सत्य हुआ है उसे इन सब ग्रन्थोंसे, मठोंसे वनोंसे, खास सम्प्रदायोंके अधिकारसे निकालकर सारे भारतमें फैला देना होगा जिसमें इन सब शास्त्रोंमें भरे हुए महावाक्योंकी ध्वनि उत्तरसे दक्खिन, पूर्वसे पश्चिम, हिमालयसे कन्याकुमारी, सिन्धुसे ब्रह्मपुत्रतक गूंज उठे। हरेकको ये सब शास्त्रोंमें भरे हुए उपदेश सुनाने पड़ेंगे, कारण, शास्त्रमें कहा है, हमें पहले श्रवण, तब मनन, और उसके बाद निदिध्यासन करना चाहिए।

४—लीडर (नेता) क्या गढ़े जाया करते हैं? लीडर जन्मसे ही हुआ करते हैं—समझे या नहीं? लीडरी करना बहुत कठिन है—'दासस्य दासः'—हजारोंका मन समझाना। जिसमें ईर्षा,

स्वार्थपरता का नाम निशान भी न हो वही लीडर है। पहले जन्मसे फिर निस्स्वार्थ, तब लीडर।

५—भारतमें सभी नेता बनना चाहते हैं, पीछे चलनेवाला कोई नहीं। हरेकको चाहिए कि हुकुम देनेके पहले हुकुम बजाना सीखे। हमारी ईर्षाका ठिकाना है ? जितने कमजोर हैं उतनेही ईर्ष्यापरायण हैं। जबतक इस ईर्ष्या-द्वेषका अन्त नहीं होता और हिन्दू लोग नेताकी आज्ञा मानना नहीं सीखते, तबतक एक समाज संगठन नहीं हो सकता, तबतक हम यों ही बिखरे रहेंगे, कुछ न कर सकेंगे। युरोपसे भारतको बाहरी प्रकृतिको जय करना सीखना पड़ेगा और भारतसे युरोपको अन्तःप्रकृति पर जय करना। फिर हिन्दू और युरोपीयका कोई टंटा न रहेगा। दोनों प्रकृतियोंको जय करने वाला एक आदर्श मनुष्यसमाज बन जायगा। हमने मनुष्यत्वके एक सिरेको और उन्होंने दूसरे सिरेको विकसित किया है। इन दोनोंके

मिलनकी जरूरत है। मुक्ति जो हमारे धर्मका मूल मंत्र है, उसका वास्तविक अर्थ ही है दैहिक मानसिक आध्यात्मिक सभी तरहकी स्वाधीनता।

विविध।

इस जगमें जो तीन तरहके दुःख हैं, सब शास्त्रोंका सिद्धान्त है कि ये नैसर्गिक नहीं, अतः उनसे छुटकारा मिल सकता है।

२—जिसे लोग स्वभाव या अदृष्ट कहते हैं वह सिर्फ ईश्वरकी इच्छा है।

३—भोगको लखफना सांप समझो, उसे कुचलना पड़ेगा। संभव है भोगको त्यागकर बैठनेमें कुछ हाथ न आवे तो निराशा आ दबावे, लेकिन बढ़े चलो कभी पिंड न छोड़ो।

४—मंगल वस्तु सत्य के आस पासकी चीज है फिर भी वह सत्य नहीं है। अमंगल हमें विचलित न कर पावे यह सीखनेके बाद यह भी सीखना पड़ेगा कि मंगलसे हम फूल न

उठ। हमें अपनेको मंगल अमंगल दोनोंसे परे समझना पड़ेगा। उनका भीतरी तत्व समझ लेना पड़ेगा कि जहां एकसे सम्बन्ध जोड़ा दूसरा जरूर आ धमकेगा।

५—किसी विषयमें मनको चारों ओरसे खींचकर लगाने का नाम ध्यान है। एकाग्र करनेकी शक्ति आ जानेसे फिर चाहे जिस विषयमें मनको एकाग्र किया जा सकता है।

६—मुख्या भक्ति और मुख्य ज्ञानमें कोई अन्तर नहीं है मुख्या भक्तिके माने भगवानको प्रेमस्वरूप समझना, मुख्य ज्ञानके माने सर्वत्र एकत्वानुभूति है, सर्वत्र आत्मस्वरूप दर्शन

७—त्यागही हमारे चरित्रका सर्वोच्च आदर्श होना चाहिए। केवल त्याग द्वारा ही यह अमृ-तत्व पाया जा सकता है त्यागही महाशक्ति भार-तका सनातनझंडा है। हिन्दुओ, इस त्यागके झंडेको मत त्यागना, उसे सबके आगे रखो।

समाप्त

हिन्दी पुस्तक एजेन्सीमाला

नाम पुस्तक	लेखक	मूल्य
१ सप्तसरोज	"प्रेमचंद"	॥)
२ महात्मा शेखसादी	"	॥)
३ विवेकवचनावली	स्वा० विवेकानन्द	।)
४ सेवासदन	"प्रेमचंद"	२॥)
५ संस्कृत कवियोंकी अनोखी सूझ	पं० जनार्दन भट्ट	।=)
६ लोकरहस्य	एक हिन्दी रसिक	॥=)
७ खाद	मुख्तारसिंह वकील	१)
८ प्रेम-पूर्णिमा	"प्रेमचंद"	२)
९ आरोग्य साधन	महात्मा गांधी	।-)
१० भारतकी साम्पत्तिक अवस्था	प्रो० राधाकृष्ण झा	२॥)
११ भावचित्रावली (१०० चित्र	वीरेन्द्रनाथ	४)
१२ राम बादशाहके छः हुक्मनामे	स्वा० रामतीर्थ	१।)
१३ मैं नीरोग हूं या रोगी?	"एक लाभप्राप्त"	।)
१४ रामकी उपासना	स्वा० रामतीर्थ	।)
१५ बच्चोंकी रक्षा	लूई कूने	।-)
१६ मुखाकृति निदान	"	२)

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, १२६, हरिसन रोड, कलकत्ता।